
प्रवचन-7 वचनामृत-51 से 56

वचनामृत, 51 वाँ बोल है। 50 हुए (न)? यहाँ तो मुख्य बात है कि यह आत्मा जो है, वह निर्मल (है)। अन्दर त्रिकाल निरावरण निर्मल है। इसके ध्येय को चूकना नहीं—(ऐसा इस बोल में कहेंगे)। 51 वाँ बोल।

आकाश-पाताल भले एक हो... आहा...हा...! आकाश और पाताल भले एक हो, परन्तु भाई! तू अपने ध्येय को मत चूकना,... सूक्ष्म बात है, भाई! ध्येय जो आत्मा है, सत् चिदानन्द प्रभु! मंगलिक, उत्तम और शरण, वह अन्दर ध्रुवस्वरूप है। ऐसे ध्येय को तू चूकना नहीं। लाख बात आयें, प्रभु! आकाश और पाताल कदाचित् एक हो तो भी तेरे ध्येय को तू चूकना नहीं। यह मुद्दे की रकम है! है?

अपने प्रयत्न को मत छोड़ना। अन्दर में शुद्ध स्वरूप की सन्मुखता का प्रयत्न होना, (वह सही प्रयत्न है)। सूक्ष्म बात है, भगवान! अन्दर में शुद्ध स्वरूप के (सन्मुख होने का) जो प्रयत्न हो, उसे छोड़ना मत.....।

आत्मार्थ को पोषण मिले, वह कार्य करना। (अर्थात्) आत्मस्वभाव को पोषण मिले, वह कार्य करना। अन्तर में दर्शन, ज्ञान, वीर्य-सबको अन्तर चैतन्यस्वभाव में (मोड़ दे।) श्रद्धा-ज्ञान में ध्येय को मत चूकना। करना तो यह है। इसके बिना जन्म-मरण के

फेरे—चौरासी के अवतार मिटेंगे नहीं। है?

आत्मार्थ को पोषण मिले, वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ...
(अर्थात्) आत्मा के द्रव्यस्वभाव के ध्येय में चढ़ा, उसे पूर्ण करना,... आहा...! यह ध्येय है। बाकी यह बीच में जितने शुभभाव आयें, वे छोड़ने योग्य हैं। आहा...! राहगीर को जहाँ जाना है, उसमें बीच में (दूसरे) जितने मार्ग आयें, वे छोड़ने योग्य हैं। आहा...हा...!

आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पाती है! तब आत्मा सत् चिदानन्द ध्रुव शुद्ध (है), उस ध्येय को पकड़ती है और उस ध्येय को पकड़ने पर, प्रयत्न उस तरफ झुकता है। उसे पूर्ण करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ, उसे पूर्ण करना। आहा...हा...! **अवश्य सिद्धि होगी। अवश्य मुक्ति होगी। आहा...!**

शब्द तो सादे हैं (परन्तु) भाव तो अन्दर के अनुभव के हैं। अनुभव में से वाणी निकली है। आनन्द के अनुभव में जो सहज बोले, वह वाणी यह निकल गयी है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव (है)।

सम्यग्दृष्टि को सम्यग्ज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन—अनुभव होता है। आहा...हा...! तब उसे धर्म की शुरुआत कहते हैं। आहा...! उस आनन्द की लहर में, अतीन्द्रिय आनन्द के ध्येय में आरूढ़ आत्मा, बाहर में अनेक प्रकार के विकल्प आने पर भी, उन्हें छोड़ता जाता है। उनका आदर नहीं करता। यह वस्तु है।

(यहाँ कहते हैं) **अवश्य सिद्धि होगी।** ध्येय को पकड़कर अन्दर में जायेगा तो अवश्य तेरी मुक्ति होगी। इसमें सन्देह को स्थान नहीं है। परन्तु उस ध्येय को पकड़ना चाहिए। आहा...हा...!

सुबह तो आया था न? प्रथम आत्मा को जानना चाहिए—ऐसा कहा था। दूसरी सब बातें छोड़ देना! पहले में पहले (आत्मा को जान) ! भगवान अन्दर पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरा द्रव्य है। यह त्रिकाली द्रव्य तो निरावरण है। उसे दृष्टि में लेने पर, ध्येय को पकड़ने पर, पर्याय में जो आनन्द आया है, ऐसे ध्येय को छोड़ना मत। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं! **अवश्य सिद्धि होगी।** 51 वाँ बोल (पूरा हुआ)।

शरीर शरीर का कार्य करता है, आत्मा आत्मा का कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र हैं, उनमें 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा। देह के लिये अनन्त भव व्यतीत हुए; अब, सन्त कहते हैं कि अपने आत्मा के लिये यह जीवन अर्पण कर ॥52 ॥

52 (वाँ बोल)। शरीर शरीर का कार्य करता है,... क्या कहते हैं? यह शरीर का चलना, फिरना, बोलना, ये सब शरीर के कार्य शरीर करता है, आत्मा नहीं। आहा...हा...! शरीर, शरीर का कार्य अर्थात् पर्याय करता है। शरीर की पर्याय, यह हिलना, यह चलना, बोलना—सब कार्य—शरीर की पर्यायरूपी कार्य है। वह आत्मा का कार्य नहीं। आहा...हा...!

आत्मा आत्मा का कार्य करता है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, वह ज्ञान और आनन्द के अनुभव का करता है। दोनों का कार्य एक क्षण में एकदम साथ-साथ होते हुए भी, दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न है। अब यहाँ तक जाना...! बीच में दूसरे कामों का लक्ष्य छोड़कर वहाँ जाना है। करना यह मुख्य है। आहा...!

आत्मा आत्मा का कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र हैं,... आहा...हा...! यह होठ हिलना भी जड़ की क्रिया है; आत्मा की नहीं। वाणी निकलती है, वह भी जड़ की क्रिया है, भाषावर्गणा की क्रिया है; आत्मा की नहीं। आहा...हा...! चश्मा यहाँ नाक पर आता है, वह चश्मा का कार्य है; आत्मा का नहीं। आहा...हा...! ऐसा गले उतरना...!

(कहते हैं कि) दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र हैं। परमाणु, आत्मा के कारण से नहीं और आत्मा, परमाणु के कारण से नहीं। आत्मा में आत्मा के लक्ष्य से जो आनन्द आये, वह कोई शरीर या राग की अपेक्षा नहीं रखते; और शरीर, वाणी की क्रिया हो, उसमें आत्मा की कोई अपेक्षा नहीं है, आहा...हा...!

उनमें 'यह शरीरादि मेरे'... शरीरादि मेरे (कहा इसमें) आदि में लड़का, लड़की, पैसा, आबरू, कीर्ति, मकान सब (आ जाते हैं)। आहा...हा...! एक चैतन्यतत्त्व को छोड़कर, राग से लेकर जितने बाह्य तत्त्व हैं, वे सब मेरे—यह मान्यता मिथ्यात्व और विपरीत श्रद्धा है। आहा...हा...! प्रथम ही यह इसका मिथ्यात्व का महान दोष है। इस दोष को मिटाने

– ‘शरीर, शरीर का कार्य करता है; आत्मा, आत्मा का कार्य करता है’ वैसे इसे (दोनों की) भिन्नता का ज्ञान करना पड़ेगा। आहा... !

उनमें ‘यह शरीरादि मेरे’ ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर,..... (अर्थात्) शरीर की अनुकूलता देखकर, विषयादि के साधनों को देखकर, ‘मुझे अच्छा लगता है, मज़ा आता है’—ऐसा न कर, प्रभु! वह सब दुःख है। प्रतिकूलता के साधन में—शरीर में रोग आये, शरीर के टुकड़े हो जाये, चूरा हो जाये, आहा...हा... ! गाड़ी में त्रास दे, हाथी के पैर तले कुचल दें! (यह देखकर दुःखी न हो।)

‘टोडरमलजी’ को हाथी के पैर तले कुचल दिया था। ‘मोक्षमार्ग प्रकाशक’ है, जिन्होंने बनाया, उन्होंने स्पष्ट बात की है। वह बात राजा को, कुछ लोगों को रुचि नहीं। ‘मोक्षमार्ग प्रकाशक’ ! जो सत्य था, वह उसमें लिखा। प्रसिद्धि में (शास्त्र) आया (तो) कुछ लोगों को (बात) जची नहीं, इसलिए राजा के पास चुगली करके कहा (कि) साहब ! यह तो सत्य को बहुत हानि पहुँचाता है ! शिव की मूर्ति जेब में रखता है ! डाली स्वयं ने ! और उसका अनादर करता है ! (यह सुनकर) राजा ने हुकम कर दिया कि, ‘इसे हाथी के पैर तले कुचल दो !’ अरर... ! वह काल कैसा होगा ? जैन होंगे... जैन के लोग होंगे ! फिर भी वह काल ऐसा था (तो) राजा ने हुकम कर दिया (कि) ‘हाथी के पैर तले (कुचल दो) !’

हाथी आया। हाथी भी पैर रखने से जरा हिचक रहा था। स्वयं कहते हैं, ‘अरे... हाथी ! राजा ने जब हुक्म किया है, तो तू क्यों हिचकता है ? भाई !’ आ...हा...हा... ! ‘ऐसे शरीर पड़ा है, उस पर पैर रख दे तू !’ आहा... ! ‘मेरा आनन्द का नाथ इसमें नहीं कुचलेगा ! मेरा प्रभु इससे भिन्न है।’ आहा... ! पैर रखने में हाथी हिचक रहा था ! ऐसे जवान आदमी को... अररर... ! पैर रखना ! (टोडरमलजी ने कहा) ‘भाई ! राजा को जब इस प्रकार बुद्धि सूझी है तो तू क्यों हिचकता है ? भाई !’ आहा...हा... ! जरा-सा भी द्वेष नहीं है हाथी पर ! और राजा पर ! ‘जिस काल में जो पर्याय होनेवाली है, उसे कौन रोक सके ? मैं एक चैतन्य आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हूँ ! उसमें किसी का असर (नहीं होता), उसे कोई बाधा करनेवाला है नहीं !’ (ऐसा समाधान वर्तता है)। आहा...हा... !

भाई ! वह हाथी ऐसे आता है, पैर रखता है, देह छूट जाती है। आहा...हा... ! स्वर्ग में चले जाते हैं। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के कर्ता ! शरीर से भी ममता छूट गयी है। शरीर मेरा नहीं। उसको रहना हो तो रहे और नहीं रहना हो तो न रहे। मेरे अधिकार की बात नहीं है। मेरा अधिकार तो मेरे आत्मा के लिये है। आहा...हा... ! ऐसी अन्दर में द्रव्य की दृष्टि, आत्मा के ध्येय की दृष्टि किये बिना, ऐसी समता ऐसे काल में रह नहीं सकती। इस आनन्द (स्वरूप की) जहाँ द्रव्यदृष्टि हुई है, वह हाथी पैर (रखता) है फिर भी स्वयं आनन्द में हैं !! आहा...हा... !

जिसने देह से भिन्न आत्मा को जाना है, ऐसा सम्यग्दृष्टि, फिर चाहे आठ वर्ष की बालिका हो, या कुत्ते का बच्चा हो परन्तु समकित प्राप्त करते हैं। ढाई द्वीप से बाहर असंख्य तिर्यच सम्यग्दृष्टि हैं। यह मनुष्य क्षेत्र है (वह) 45 लाख योजन (में) (है)। मनुष्य वहाँ तक ही हैं। फिर ढाई द्वीप से बाहर असंख्य द्वीप हैं और असंख्य समुद्र हैं। उन सब में केवल तिर्यच ही बसते हैं। उन तिर्यच में भी असंख्यवें भाग में कितने ही समकित हैं। असंख्यगुने मिथ्यादृष्टि हैं। वे (असंख्य) तिर्यच समकित हैं ! आहा...हा... !

बिल्ली होती है, उसे समकित हो और हो तो बाघ खाने आये (तो) डरे नहीं। निडरता से अन्दर (रहती है) कि शरीर मेरा नहीं है। शरीर की स्थिति (मेरी नहीं)।

'श्रीमद्' में आता है न?

'एकाकी विचरूंगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।'

आहा... ! मेरी दशा ऐसी आवे ! चाहे जैसा प्रतिकूल प्रसंग बने... !

'एकाकी विचरूंगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो।'

'श्रीमद् राजचंद्र' गृहस्थाश्रम में कहते हैं !!

'अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो।
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब।'

मित्र का योग हुआ! मुझे शरीर चाहिए नहीं और उसे चाहिए (तो) भले ही ले जाये!! आहा...हा...! (परन्तु) ऐसा कब होता है प्रभु?! शरीर से आत्मा को भिन्न जाना हो, तब यह बात होती है। शरीर, वाणी, मन और राग में रँगनेवाले को यह बात नहीं बैठेगी। आहा...हा...! राग, शरीर और वाणी, यह जड़-मिट्टी, इसका जिसे रंग चढ़ा, उसे आत्मा का रंग नहीं चढ़ता और जिसको आत्मा का रंग लगा है, उसे शरीर आदि का रंग छूट जाता है। आहा...हा...! वही कहते हैं कि यदि इस देह को सिंह ले जाये तो (वह) मेरा मित्र है। मुझे देह चाहिए नहीं और उसको देह चाहिए (तो वह) मेरा मित्र है!! आहा...हा...!

गृहस्थाश्रम में (थे)! लाखों रुपयों का जवाहरात का व्यापार था। उनका नैतिक जीवन तो अलौकिक था!! 'श्रीमद् राजचन्द्र'! एक बार किसी के साथ हीरे का सौदा किया था। उसमें जिन हीरों का सौदा किया था, उसके बजाय दूसरे हीरों की पुड़िया वह आदमी दे गया। साधारण हीरों का व्यापार किया था। साधारण हीरे माँगे थे। ऐसा निश्चित किया था कि ये हीरे (लेने)। इसके बजाय वह गलती से बहुत कीमती हीरों की पुड़िया दे गया। इन्होंने घर या दुकान पर देखा... तो यह क्या?! लाखों रुपयों की जिसमें आमदनी (थी)! जिन कीमत के जिन हीरों का सौदा किया था, वह नहीं और यह क्या? अरेरे..! जिसके हैं वह अभी आयेगा! ज्यों का त्यों रख दिया। पुड़िया ज्यों की त्यों बन्द करके रख दी! वह लेने आया—(और कहा) 'प्रभु! हमारा जो सौदा हुआ था, वह यह नहीं। यह चीज़ तो (मूल्यवान) हीरे—मानिक हैं। इसमें तो लाखों रुपये की कीमत के (हीरे) आ गये हैं।' ('श्रीमद्जी' ने कहा) 'भाई! यह रखी है तुम्हारी पुड़िया, बापू! वह मेरा नहीं। हमने इसका सौदा नहीं किया था। प्रभु! ये ले जा तेरा!!' आ...हा...हा...!

यह तो कितने वर्ष (पहले की) बात (हुई)। यह 57 वर्ष पहले की बात है। संवत् 1957 वर्ष पहले!! अभी तो पूरा जीवन ही बदल गया है। उस समय तो कितना ही नैतिक जीवन भी था। ऐसे जीवन में, लाखों की आमदनी एक पुड़िया में थी। लेकिन ऐसे देखा... और वापस बाँधकर रख दिया। वहाँ वह लेने आया (और कहा) 'साहब! हमने इसका व्यापार नहीं किया था।' ('श्रीमद्जी' ने कहा) 'भाई! ये रहे, बापू! ले जाइये!!' वह कहता है कि, 'ये है कौन?!' '50 की साल में जिसमें लाखों की आमदनी!' अभी तो लाख अर्थात् साधारण गिना जाता है। पहले के लाख और अभी के पच्चीस लाख! सब एक

बराबर ! उस समय में ऐसी लाख की आमदनी को छोड़ दिया.. पैसे लेनेवाले को तो लगा 'ये है कौन ? !' ये तो... आहा...हा.. ! यह पुरुष कौन है ? ! कि जिसको मैंने पुड़िया दी और उसमें से कुछ न लेकर वापिस रख दिया !' ऐसा तो समकित्ती का नैतिक जीवन होता है !! झवेरचन्दभाई ! समकित्ती का-धर्मी का नैतिक जीवन ऐसा होता है !! जिसको पैसे आदि की दरकार नहीं। अनैतिकपना बिलकुल नहीं हो सकता। परस्त्री का त्याग होता है। स्वप्न में भी परस्त्री नहीं होती। वह माँस, दारू, शराब को छूए तक नहीं। इसके सामने देखे नहीं। आहा...हा... !

जिसको आत्मा हस्तगत हुआ है, कहते हैं कि 'शरीर शरीर का कार्य करता है।' 'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर,... आहा...हा... ! मुनियों को घानी में पील डाला है ! उस समय काल कैसा होगा ? जैन होंगे लेकिन कोई बोल नहीं सका होगा। मुनियों को ! महान सन्तों को ! दिगम्बर मुनि ! आत्मध्यानी आनन्द में रमणता करनेवाले, उन पर राजा को शंका हो गयी कि रानी के साथ इसकी कोई बातचीत या कुछ (दूसरा है) ! (इसलिए) घानी में पील दो ! घानी में पील दिया ! तिल को पीलते हैं वैसे पील दिया ! लेकिन (मुनिराज तो) अन्तर आत्मा के आनन्द के ध्यान में (लीन) ! आहा...हा... ! मेरा आनन्द है वह मेरे पास है। शरीर को मैं छूता नहीं और यह पीलनेवाला भी शरीर को छूता नहीं। मेरी चीज़ तो इससे भिन्न है। आहा... ! ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर 'शरीरादि मेरे नहीं हैं' (ऐसा अनुभव होता है)। है ?

'यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा। आ...हा...हा... ! करना तो यही है, भाई ! लाख बात दूसरी बाहर की (हो) तो भी करना तो यही है। ज्ञाता बन जा। जानने-देखनेवाला (बन जा)। किसी भी क्रिया का बिलकुल करनेवाला नहीं और वह क्रिया मुझे छूती भी नहीं। आहा...हा... ! मैं तो अशरीरी चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा (हूँ)। ऐसा एक क्षण के लिये तो बन जा ! पड़ोसी तो बन जा ! आहा...हा... ! शरीर, वाणी और परचीज़ का पड़ोसी हो जा ! आहा... ! है ?

देह के लिये अनन्त भव व्यतीत हुए;... यह वाक्य 'श्रीमद्' में (आता है) देह के लिये आत्मा ने अनन्त भव किये। देह की ममता के लिये अनन्त-अनन्त भव किये। आहा... ! चींटी, कौआ, कुत्ता, नरक, निगोद... वीतराग कहते हैं कि जिसके दुःख सुने

भी न जाये और उस दुःख को भोगते समय देखनेवाले की आँख से आँसुओं की धारा निकलती है ! ऐसे दुःख प्रभु तूने अनन्त भवों में (भोगा है) । लेकिन (ऐसा सब) कुछ है नहीं—ऐसा माननेवाले का भविष्य में क्या होगा । (ऐसा) नहीं माननेवाले को यह बात नहीं बैठेगी ।

प्रभु ! किन्तु तू तो आत्मा है न नाथ ! अनादि—अनन्त आत्मा हो ! शरीर छूटेगा परन्तु तेरा आत्मा छूटेगा भविष्य में ? आत्मा तो भविष्य में भी आत्मरूप रहेगा तो वह कहाँ रहेगा ? प्रभु ! वह कहाँ जायेगा ? यह छोड़कर उसका स्थान कहाँ रहेगा ? उसका धाम कहाँ रहेगा ? यदि आत्मा को राग से (और) पर से भिन्न जाना होगा तो उसका स्थान भविष्य में भी आत्मा में रहेगा और यदि शरीर को, राग को अपना माना होगा (तो) भविष्य में मिथ्यादृष्टि में, दुःख में रहेगा । आहा...हा... ! यह देह तो अमुक काल पर्यन्त रहेगी । फिर आत्मा तो अनादि—अनन्त है, उसका तो नाश होनेवाला है नहीं । आहा...हा... ! कठिन बात है ।

वह कहते हैं । देह के लिये अनन्त भव व्यतीत हुए;... देह की ममता और वाणी की ममता के लिये, प्रभु ! तेरे अनन्त भव हुए । अब, सन्त कहते हैं... तेरी सत्ता अन्दर में भिन्न है—ऐसा सन्त कहते हैं । अब, सन्त कहते हैं कि अपने आत्मा के लिये यह जीवन अर्पण कर । आहा...हा... ! आत्मा के लिये एक बार अन्दर जा ! तेरा हित वहाँ है । बाहर किसी पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल में प्रभु ! तेरा हित नहीं है । आहा... ! तुझे न जँचे, न रुचे, परन्तु अन्त में रुचि करनी ही होगी । यदि हित करना (हो तो) यह (कार्य) करना ही होगा । बाहर में कहीं भी रंचमात्र भी सुख नहीं है । आहा...हा... ! है ? आत्मा के लिये यह जीवन अर्पण कर । आहा...हा... !

निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता । शरीर का रोग मिटना हो तो मिटे, परन्तु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती । बाहर का कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं ॥53 ॥

(53 वाँ बोल) निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता । क्या कहते हैं ? अन्तर में जिसने राग से और शरीर से भिन्न (आत्मा को) जाना, ऐसे निवृत्तिमय आत्मा को रागादि प्रवृत्ति रुचती नहीं । आहा...हा... ! राग आता है, राग होता है जरूर परन्तु रुचता

नहीं, ऐसा कहते हैं, देखा? निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। (अर्थात्) पुण्य और पाप भाव की प्रवृत्ति (निवृत्तिमय आत्मा को नहीं रुचती)। आहा...हा...! शरीर की प्रवृत्ति तो शरीर में रही। आत्मा की पर्याय में (वह नहीं), ये शरीर, कर्म, स्त्री और कुटुम्ब तो तेरी पर्याय में भी नहीं हैं। क्या कहा यह?

तेरा जो त्रिकाली चैतन्यद्रव्य है, उसमें तो वह चीज़ है नहीं परन्तु तेरी वर्तमान दशा, वर्तमान पर्याय, वर्तमान हालत है, उसमें शरीर, कर्म, स्त्री-कुटुम्ब—ये तो तेरी पर्याय में (भी) हैं नहीं। समझ में आया? वे तो उनके स्थान में हैं। तेरी पर्याय में भी नहीं। शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, आबरू—कीर्ति, मकान—ये तो तेरी पर्याय में भी नहीं हैं। परद्रव्य (अपनी) पर्याय में कैसे हो? परद्रव्य तो परद्रव्य में है। आहा...हा...! तेरी पर्याय में—अवस्था में होवे तो राग-द्वेष और अज्ञान है। आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान! अन्दर द्रव्य, गुण, पर्याय के नाम भी ठीक से सुने न हो! द्रव्य किसे कहें? गुण किसे कहें? पर्याय किसे कहें? द्रव्य तो अनन्त गुणों का पिण्ड, वह त्रिकाल द्रव्य और इस द्रव्य की शक्ति—स्वभाव—गुण है वह गुण, और उसकी बदलती-पलटती अवस्था, वह पर्याय। इस पलटती अवस्था में शरीर, कर्म, स्त्री और कुटुम्ब इसमें है नहीं! द्रव्य, गुण में तो नहीं परन्तु तेरी पर्याय में भी ये हैं नहीं! आहा...हा...! ऐसी बात! ये सब शरीर, चश्मा, हड्डियाँ और कपड़े, ये सब तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं हैं। क्या कहा समझ में आया?

आत्मा की जो वर्तमान दशा है, भले ही (उसमें) पुण्य-पाप की प्रवृत्ति हो, यह पुण्य-पाप की प्रवृत्ति तेरी पर्याय में है, जबकि ये शरीर, वाणी, कर्म और ये सारी चीज़ें तो तेरी पर्याय में भी नहीं हैं। आहा...हा...! अपनी पर्याय में जो वस्तु है नहीं, उसे अपनी मानना, (यह) बड़ा बावलापन है!

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय में पुण्य—पाप और अज्ञान है, (उसे) भी अपना मानना, वह मिथ्यात्व है; फिर जो चीज़ पर्याय में भी नहीं है—शरीर, कर्म, पैसा, आबरू, कीर्ति, धूल, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, ये सब तो आत्मा की पर्याय से बाहर वर्तते हैं (उन्हें अपना मानना वह तो महा मिथ्यात्व है)! आहा...हा...! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! परन्तु वस्तु तो बहुत सूक्ष्म है!

प्रभु! तू द्रव्य, गुण और पर्याय—तीन में हो। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली चीज़, गुण अर्थात् उसकी शक्ति और स्वभाव। पर्याय अर्थात् बदलती अवस्था। इस अवस्था में शरीर नहीं, कर्म नहीं, मकान नहीं, आबरू नहीं, पैसा नहीं, स्त्री नहीं, कुटुम्ब नहीं—पर्याय में ये चीज़ें हैं ही नहीं। आहा...हा...! पर्याय में है तो इतना है कि 'ये मेरे हैं', 'मैं उसका हूँ'—ऐसी मिथ्यादृष्टिपने की (मान्यता) पर्याय में है। आहा...हा...! भाषा तो सादी है। समझ में आये ऐसा है।

इन सारी चीज़ों की अस्ति आत्मा के द्रव्य-गुण में तो नहीं है, आत्मा जो त्रिकाली द्रव्य और गुण में तो इसकी पर्याय भी नहीं है। क्या कहा? आत्मा त्रिकाली द्रव्य (है) और उसमें त्रिकाली गुण (है)। आनन्दादि त्रिकाली गुण (है)। उसमें इसकी वर्तमान पर्याय भले ही निर्मल या रागादि (रूप हो) परन्तु वह पर्याय भी द्रव्य-गुण में नहीं है। पर्याय अर्थात् उसकी अवस्था, अवस्था में है। उस अवस्था में शरीर, वाणी, मन, कर्म आदि हैं नहीं, तो स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब तो कितने दूर रह गये! तेरी पर्याय में वे कभी आते भी नहीं। आहा...हा...! जो पर्याय में नहीं है, उसे अपना मानना, यह तो महा मिथ्यादृष्टिरूप पागलपन—बावलापन है। परन्तु पर्याय में राग-द्वेष और अज्ञान है, उसे भी अपना मानना, वह मिथ्यात्व और अज्ञान है। आहा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं, **निवृत्तिमय जीवन में...** (अर्थात् कि) राग से मैं भिन्न हूँ, ऐसा जहाँ अन्तर (में) निवृत्तिमय जीवन हुआ, उसे प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। उसे अन्दर में राग और द्वेष के परिणाम आवे, ऐसी प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहर की प्रवृत्ति तो कर ही नहीं सकता। यह व्यवसाय कर सकता होगा या नहीं? नहीं? ये कपड़े के लाखों का व्यापार, दस-दस, बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस लाख के कपड़े से बड़ी अलमारियाँ भरी हो, लाखों का व्यापार चलता हो, यह आत्मा की पर्याय में होगा या नहीं? राग है, यह चीज़ नहीं है। चीज़ तो दूर है। 'यह मेरा है'—ऐसा राग उसकी पर्याय में है। आहा...हा...! भगवानजी भाई! बातें ही अलग प्रकार (की) हैं, बापू!

यहाँ तो आ पड़े हैं, अफ्रीका में कहाँ से कहाँ!?

मुमुक्षु : अहोभाग्य हमारे !!

पूज्य गुरुदेवश्री : आपकी प्रार्थना थी। तुम्हारे रायचन्दभाई की और इन... भाई की, फिर लक्ष्मीचन्दभाई की और जेठालालभाई। रायचन्दभाई ! रायचन्दभाई पहले थे। यह वहाँ ऐसा करना है और मुझे ऐसा करना है। फिर... आया। सहज जो बनना था, यह बनने का काल है। जिस क्षेत्र से स्पर्श होना (है), उसमें कुछ अन्यथा नहीं हो सकता। जिस क्षेत्र में जो पर्याय आनेवाली है, वह क्षेत्र तीन काल में बदलना सम्भव नहीं। यह (पर्याय) करने से नहीं होती। आहा...हा... ! जिसको शास्त्र 'क्षेत्र स्पर्शना' कहते हैं। स्पर्शना का अर्थ छूना नहीं। परन्तु जिस क्षेत्र में जाना होता है, वहाँ वह जाता ही है। आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तेरी पर्याय में भी जब शरीर, वाणी, कर्म और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार या पति-पत्नी ये कुछ भी (तेरी) पर्याय में नहीं हैं, प्रभु! पर्याय में होवे तो यह कि, 'ये मेरे हैं,' 'मैं उनका हूँ' ऐसी मिथ्या भ्रान्ति तेरी पर्याय में है। आहा...हा... ! इस भ्रान्ति की पर्याय का एकबार छेद डाल न! प्रभु! ऐसा अवसर बार-बार मिलना मुश्किल है, नाथ! ऐसा मनुष्यपना मिलना दुर्लभ है! इसमें भी सच्चा सत्समागम और वीतराग जिनवाणी का मिलना, यह तो महा मुश्किल है!! आहा...हा... !

एक बार तो कहते हैं कि निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। जिसको राग और द्वेष, पर्याय में होने पर भी द्रव्य की दृष्टि से उसमें है नहीं, ऐसा जिसका सम्यक् जीवन हो गया, उसे राग की प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। पर की क्रिया की प्रवृत्ति (का) कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं है। कपड़े का व्यापार और ये कपड़े इधर से उधर करना, अलमारी में जँचाना, ये सारी क्रियाएँ आत्मा कर सकता नहीं। मात्र 'ये मेरा और मैं कर सकता हूँ'—ऐसी विभ्रमणा उसकी पर्याय में है परन्तु जिसने इस विभ्रम को टाला, ऐसे निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्ति का राग आये तो भी रुचता नहीं, सुहाता नहीं, रुचता नहीं, दुःखरूप लगता है। जैसे छुरी (का) घाव पड़ता हो, शरीर पर जैसे छुरी की चोट पड़े; वैसे निवृत्तिमय जीवनवाले को राग और द्वेष के परिणाम छुरे के प्रहार जैसे दुःख (रूप) लगते हैं!! आहा...हा... ! ऐसी बातें हैं, प्रभु! यह नैरोबी शहर में ऐसी बातें!! बिना भाग्य के बापू! यह मिले ऐसा नहीं है!! आहा...हा... ! पण्डितजी!

भगवान आत्मा! त्रिकाल निवृत्तमय है। द्रव्य है, वह तो त्रिकाल निवृत्तमय ही है। पर्याय में राग हो, (परन्तु) पर्याय में परवस्तु नहीं है। पर्याय में राग हो परन्तु द्रव्य में वह नहीं

है। द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है। ऐसे निरावरण (द्रव्य की) दृष्टि हुई, उसे प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।

(अब कहते हैं कि) शरीर का रोग मिटना हो तो मिटे,... आहा...हा...! समकिति को निवृत्त जीवन है, उन्हें शरीर में रोग आये, वह मिटना हो तो मिटे! इसकी उन्हें चिन्ता होती नहीं! आहा...हा...! (क्योंकि) वह मेरी वस्तु नहीं है। मेरी नहीं है, उसमें जो होना हो, सो हो। मुझे क्या है? आहा...हा...!

राजा महल में रहता हो और साथ में (रही हुई) कोई झोंपड़ी जलती हो तो इससे वह दुःखी होगा? वह झोंपड़ी उसकी है—किसी गरीब की है, उसका होगा! मेरा मकान तो कोई जलता नहीं। वैसे शरीर, मन, वाणी में कोई भी रोग आदि आने पर... आहा...हा...! रोग मिटे या न मिटे, इसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बहुत सूक्ष्म है, प्रभु!

यह तो बहिन को अन्दर से (आया है)। 64 ब्रह्मचारी बहिनें-बेटियाँ हैं। उनके बीच ये बोले थे, जिसमें ये सब आ गया है। बहिन तो अभी एक 'पवित्र मूर्ति' हैं!! हिन्दुस्तान में स्त्री में दूसरा ऐसा जीव मिलना मुश्किल है!! ऐसा वह जीव है! ऐसे ही कोई संस्कार लेकर आये हैं कि उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता। वे भगवान की भक्ति में बैठे और उल्लास दिखे, परन्तु उन्हें अन्दर में रुचता नहीं!! धन्नलालजी! आहा...हा...! अरे...! बहिन यहाँ आ न सकें! डॉक्टर ने मना किया कि बाहर घूमना नहीं है। आहा...! इसलिए यहाँ से पहले सोनगढ़ जाना पड़ेगा। दूसरों की बहुत प्रार्थना है लेकिन बहिन आ सके नहीं। इसलिए बीच में—महीने-सवा महीने का विरह पड़ गया है! इसलिए पहले तो मुम्बई होकर सोनगढ़ जाना पड़ेगा। फिर अन्यत्र (जाना होगा)।

बड़ौदा में मन्दिर होनेवाला है। बड़ौदा में मन्दिर हुआ है। उसका फागुन सुदी-13 का मुहूर्त है। वहाँ जाना पड़ेगा, ऐसा अभी लगता (है)। इससे अठारह मील दूर हमारा व्यापार का गाँव, 'पालेज' था, वह पालेज पास है (वहाँ) लड़के हैं। वे लोग भी बेचारे दो-चार दिन की माँग करते हैं तो जाना पड़ेगा!! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, कौन कहाँ जाये? कौन कहाँ रहे? यह तो शरीर की स्थिति जहाँ रहने की हो, वहाँ रहती है और नहीं रहने की हो, वहाँ नहीं रहती। आत्मा, शरीर को ले जाये या

आत्मा, शरीर को जाने से रोक ले, यह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहा...हा... !
ऐसा सुनना मुश्किल पड़े ! (फिर भी) बहिनें-लड़कियाँ सब उत्साहपूर्वक सुनते हैं ! आदमी
भी उत्साहपूर्वक सुनते हैं। आहा... ! ऐसी बात है, प्रभु !

एकबार 'हाँ' तो कर ! 'हाँ' करेगा तो हालत होगी। सत्य यही है, दूसरा कोई मार्ग
नहीं है, ऐसी यदि अन्दर से 'हाँ' आयेगी तो 'हाँ' में से 'लत' होकर 'हालत' अर्थात् पर्याय
होगी !! 'हाँ' में से 'हालत' होगी ! परन्तु 'ना' में से नरक होगा !! 'ना' करेगा तो नरक और
निगोद होंगे। आहा...हा... ! ऐसा स्वरूप है, प्रभु !

बहिन की भाषा संक्षेप है परन्तु उसमें गहराई बहुत है!! आहा... !

(यहाँ कहते हैं, शरीर में रोग आये) परन्तु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती। शरीर
में रोग आये तो उसे मिटाने की प्रवृत्ति भी नहीं सुहाती। आहा...हा... ! बाहर का कार्य
उपाधि लगता है,... बाहर के जितने भी काम (हैं वे) सब उपाधि लगते हैं। रुचता नहीं।
आहा...हा... ! अन्तर में उसे रुचता नहीं। राग और पुण्य-पाप के विकल्प से प्रभु ! तू भिन्न
है। उसे एक बार रुचि में ले तो सही ! पोषाण तो कर !

बनिये को व्यापार में पाँच रुपया मण माल मिलता हो और यहाँ यदि साढ़े पाँच-छह
(रुपये) में बिकता हो, जब तो लायेगा, तो उसे पुसाता है परन्तु पाँच रुपये में लाकर यहाँ
चार में बिकता हो और पाँच भी यदि नहीं मिलते हो, वह माल लायेगा ? यह बनिये को
पुसायेगा ? पाँच रुपया का मण भले ही सौ मण (लाये) या हजार मण लाये, परन्तु यहाँ छह
रुपया उपजता हो या साढ़े पाँच उपजते हो तो लायेगा।

वैसे अन्दर आत्मा को... आहा...हा... ! राग और पुण्य-पाप रुचते नहीं, उसे सुहाते
नहीं। उसका पोषाण तो आत्मा में ही है। आत्मा पुसाता है। आहा...हा... ! बात सूक्ष्म, प्रभु !

तेरी प्रभुता की बात क्या करना नाथ ! अन्दर भगवत्स्वरूप है ! परन्तु अभी ये बातें
बहुत कम हो गयी, बदल गयी। प्रवृत्ति में सर्वस्व मान लिया। अतः अन्दर में निवृत्तिमय
कौन है ? इस तत्त्व की बात ही गुम हो गयी ! आहा...हा... !

यहाँ कहते हैं, बाहर का कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं। आहा...हा... !

**अनुकूलता में नहीं समझता तो भाई! अब प्रतिकूलता में तो समझ!
किसी प्रकार समझ... समझ, और वैराग्य लाकर आत्मा में जा ॥54 ॥**

54 (वाँ बोल) अनुकूलता में नहीं समझता तो भाई! अब प्रतिकूलता में तो समझ! शरीर में रोग आये, श्वास चढ़े, घाव हो,... आहा...हा...! अन्दर में रोग में चिल्लाता हो, रोम-रोम चीखता हो! शरीर वैसा का वैसा हो परन्तु भीतर में से अंगारे उठे... ऐसे अंगारे उठे...! अपने एक सेठ आया है न?... मुम्बई में। अरे! वह तो नहीं परन्तु एक बहिन है हमारे सोनगढ़ में— 'ललिताबेन' उन्हें पूरे शरीर में अग्नि (दाह) जले। इस शरीर में (यदि) अग्नि भी जले, लेकिन अन्दर आत्मा का यदि ज्ञान करे तो, यह अनुकूलता में नहीं समझता तो प्रतिकूलता के समय तो समझ (कि) ऐसी स्थिति आकर खड़ी रही है, वह जड़ की है मेरी नहीं। मेरी वज्रह से नहीं हुई। वह तो उसके कारण से क्रमबद्ध अवस्था में (उसके) कारण से वह अवस्था हुई है। मेरे में वह है नहीं। आहा...हा...!

शरीर में कीड़े पड़े! एक बार कहा था न? एक अठारह साल की बाई थी। दो साल शादी को हुए थे। उसके पति की वह दूसरी (स्त्री) थी। हमारे तो वहाँ बहुत परिचय (है)। ऐसे में उसे शीतला निकली। 'शीतला' समझते हो? इस शीतला में दाने-दाने में कीड़े पड़ गये! दाने-दाने जीव उत्पन्न हो गये! कीड़े! पूरे शरीर में...! अठारह साल की उम्र! (उसको) गद्दे पर सुलाया था। ऐसे घुमाये तो हज़ारों कीड़े (पड़े) ऐसे दूसरी ओर घुमाये तो वहाँ हज़ारों (कीड़े गिरे)!! वे (कीड़े) अन्दर काटे..! वह (अपनी माँ को कहती है), 'माँ!...' ऐसे बोलती थी। 'लाठी' की बात है। है कोई लाठी के? 'धीरुभाई के ड्योढ़ी में— बहुत साल (पहले की) बात है।

मुमुक्षु : छोटा भाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये 'छोटा भाई' भी है। 'धीरुभाई नहीं यह 'धीरु'? इसका दरवाजा है न, उसके अन्दर है। बाई को कीड़े पड़ गये थे वह (कहती है,) 'माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये! यह क्या आया है? मेरे से सहन नहीं होता! सोया नहीं जाता,

फिरा नहीं जाता, रहा नहीं जाता, करवट बदल नहीं सकती। शरीर ऐसे पड़ा हो तब कीड़े काटते हैं!' आहा...हा...! पूरे शरीर में, (फिर तो) देह छूट गयी।

ऐसे दुःख आये तो भी कहते हैं, समकिति को इसकी दरकार नहीं रहती! ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! जिसने जीव को राग और शरीर से भिन्न जाना, उसके शरीर में ऐसे कीड़े पड़े... कोई (ऐसा) असाता का उदय आये.. आ...हा...हा...! तो भी उसमें से उसकी प्रवृत्ति करना रुचता नहीं, सुहाता भी नहीं। आ...हा...हा...! है?

अनुकूलता में नहीं समझता तो भाई! अब प्रतिकूलता में तो समझ! किसी प्रकार समझ... समझ, और वैराग्य लाकर आत्मा में जा। आहा...हा...! शरीर में रोग आये तो उस प्रतिकूलता के समय प्रभु! एक बार ऐसे अन्दर में जा न! अन्दर भगवान विराजमान है! अरे! कैसे माने? अभी तो एक अंक लिखना नहीं आता, इसको ये सारी बातें (कैसे) समझ में आये? भगवान! समझनी होगी, प्रभु! वरना यह भव चला जायेगा। शरीर का नाश होकर श्मशान की राख होगी!! इसकी तो राख (होनेवाली है)! यहाँ से अग्नि निकलेगी!! आहा...! यह (शरीर) कोई सोना नहीं है, सोना हो तो भी क्या? आहा...हा...! मैं शरीर से भिन्न (हूँ ऐसा) प्रभु! एक बार निर्णय कर! निर्णय करके शरीर में दुःख आये तब तो समझ! अनुकूलता में नहीं समझता तो प्रतिकूलता में तो समझ, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! यह भाई.... नहीं। ये....

मुमुक्षु : झवेरचन्दभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : झवेरचन्दभाई नहीं? ये बेचारे ऐसे.... उनके घर गये तो रोने लगे। कठिनता से उसने देखा... भाई नहीं? ...ना.... 'भाई' उनके घर में... बहिन है... गये थे। ऐसे, आहा...हा...! बहिन ने तो... लगाया, वे भी रोने लगी। यह... जड़ की अवस्था। बापू! दूसरों को (प्रतिकूलता) है—ऐसा मानकर, मुझे नहीं आयेगी—ऐसा मत रहने दे। समझ में आया? ऐसी अवस्था प्रभु! अनन्तबार तेरी भी हुई है। उसे तू भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था, ऐसे कैसे कहा जाए? नाथ! पूर्व में अनन्त बार प्रतिकूलता आयी है। ऐसी आयी है कि रोटी का टुकड़ा भी न मिले और शरीर में लट-कीड़े पड़े हो, फिर भी देह छूटे नहीं, पाँच-पच्चीस साल रोग में ऐसा का ऐसा रहना पड़े। अब ऐसे समय तो आत्मा को भिन्न मान!

ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! है न?

वैराग्य लाकर आत्मा में जा। आहा...हा...! पर के प्रति वैराग्य लाकर, स्व जो चैतन्य का घर है, उस निज घर में जा! पशु को सुबह बाहर ले जाते हैं और शाम को जब वह पशु घर आते हैं, (तब) दरवाजा बन्द हो तो दरवाजे से सिर मारता है! देखा है या नहीं? गाँव के बाहर चराने ले जाते हैं या नहीं? इसमें (शाम को वापस) आवे और अन्दर बहिनों को पता न हो कि आया है, दरवाजा बन्द हो तो सिर मारेगा! क्योंकि यहाँ चार प्रहर रात को चैन से रहना है। इस हेतु से सिर पटकता है, फिर आराम से अन्दर रहता है! वैसे तुझे प्रतिकूलता आयी है तो सिर मार न एक बार!! और अन्दर निवृत्तिमय (स्वरूप में) जा न! ऐसा कहते हैं।

वैराग्य लाकर... आहा...! यहाँ तो यह बात है, प्रभु! वैराग्य लाकर एक बार तो अन्दर में देख! वहाँ प्रभु विराजमान है! तू भगवन्तस्वरूप है, प्रभु! मुनिराज ने तुझे 'भगवान' कहकर तो बुलाया है! है? उसमें ('समयसार' में)... 72 वीं गाथा में है। 'भगवान' कहकर बुलाया है। तीन बार 'भगवान' कहकर बुलाया है। आहा...हा...! भगवान तू तो पुण्य-पाप के मैल से रहित हो न नाथ! ऐसा वहाँ कहा है। है उसमें?

प्रभु! पुण्य-पाप के भाव है, वह तो अशुचि और मैल है न, प्रभु! तू वह नहीं। भगवान! तू तो निर्मल है न अन्दर! वहाँ नजर तो कर नाथ! आहा...हा...! मुनिराज, जगत के प्राणी को 'भगवान' कहकर सम्बोधन करते हैं! आहा...हा...!

'द्रव्यसंग्रह' का एक बार नहीं कहा था? 'द्रव्यसंग्रह!' धर्मध्यान का 'अपाय' एक भेद है। धर्मध्यान का विचार करने पर 'अपाय' एक भेद है। इसमें धर्मध्यान का विचार करनेवाला ऐसा विचारता है कि मैं तो परमात्मा हूँ ही। आत्मज्ञान हुआ है, अल्प काल में अब सिद्ध होनेवाला हूँ!! तो हे आत्माओं! आप सभी परमात्मा होओ। ऐसी बात है, लो यह! आ...हा...हा...हा...! 'द्रव्यसंग्रह' में है 'द्रव्यसंग्रह' में बताया था न? 'द्रव्यसंग्रह' यह है। 'तुम भगवान होओ! प्रभु! यह भूल जाओ (कि) देह-स्त्री का, नपुंसक का और पशु का'—ये देह तो जड़ की हैं, भूल जा नाथ! अन्दर चैतन्य आनन्द का सागर भगवान विराजता है, उसकी ओर कभी देख तो सही! नजर तो कर! यह तू पूर्ण परमात्मा (हो)!

तेरे गुणगान गाते हुए परमात्मा थक जाते हैं!! आहा...हा...! अरेरे...! सुनना मुश्किल पड़े!
प्रभु! वहाँ तू एक बार देख तो सही! नज़र तो कर!

वही यहाँ कहते हैं, वैराग्य लाकर आत्मा में जा। यह 54 वाँ हुआ।

चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है ॥55 ॥

55 (वाँ बोल)। चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती,... क्या कहा? भगवान चैतन्यस्वरूप की जिसको अन्दर लगन लगी, भावना (हुई), वह निष्फल नहीं जाती। बीज बोया वह निष्फल नहीं जाता। बीज में से वृक्ष होता है, अवश्य होता ही है। बीज बोया, वह निष्फल नहीं जाता। वैसे जिसने आत्मा का सम्यक् रूपी बीज बोया, सम्यक् भावना की, वह निष्फल नहीं जाती। सफल ही होती है। बीज बोया, इसमें से वृक्ष होता ही है और इससे असंख्यगुने फल आयेंगे। बाजरा का बीज एक हो लेकिन उसकी बाल में सैकड़ों बाजरे के दाने होते हैं। वैसे एक बार तेरे आत्मा (में) आनन्द का बीज बो दे तो अनन्त आनन्द की तुझे (फलेगा)!! आहा...हा...! प्रभु! तुझे अनन्त आनन्द आयेगा। आहा...हा...! है?

सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे,... धीरे... धीरे... धीरे... अन्दर जाने में थोड़ा समय लगे, परन्तु ऐसा करने में लगा रहे! किन्तु भावना सफल होती ही है। अन्तर की भावना जो है, वह सफल हुए बिना नहीं रहती। आहा...हा...!

जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता, और एक वस्तु खो गयी तो मानों स्वयं पूरा खो गया, रुक गया; रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है। अरे! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा! बाहर का बाहर ही रुक गया, तो भाई! वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी ॥56 ॥

56 (वाँ बोल)। अब एक बात करते हैं। जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता,... एक वस्तु खो गयी हो तो मंथन करता है कि कहाँ गयी? आहा...हा...! एक वस्तु खो गयी हो तो इसे (खोजने की मेहनत) करेगा। अरे...! दो-तीन-चार बेटियाँ हो, तीन-चार लड़के हो और इनकी खाट बिछायी हों, ऐसे में (रात के) नौ-दस बजे एक खाट खाली दिखे (तो पूछे) कि यह लड़की क्यों नहीं आयी? कहाँ है? खाट क्यों खाली पड़ी है? लड़की क्यों नहीं आयी? उसे रात में ढूँढ़ेगा! परन्तु यह आत्मा खो गया है, उसे ढूँढ़ता नहीं!! वस्तु खो गयी, उसे ढूँढ़ने के लिये प्रयत्न करता है, जो परचीज़ है। आहा...हा...!

(वही यहाँ कहते हैं कि) जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता, और एक वस्तु खो गयी तो मानों स्वयं पूरा खो गया,... उसी उसमें जैसे रुक गया! रुककर वहीं का वहीं रह जाये। आहा...हा...! उसमें रुक गया;...

अब रुकने के स्थान बतलाते हैं। रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है। नाथ! आहा...! लड़कियाँ बड़ी हो गयी हैं, उसको ठिकाने लगाना होगा, बेटे बड़े हो गये हैं, अच्छे घर से रिश्ता करना है, वरना अपनी आबरू नहीं रहेगी। अच्छे घराने की लड़की आवे तो ठीक! कठोर परिश्रम करे!! बेटी को ठिकाने लगाना है परन्तु अच्छे घर विदा करनी है और बेटे की शादी करते (समय) भी पचास-सौ रिश्ते आये हों, (सामने करोड़पति को) बेटा न हो और इकलौती बेटी पाँच-पच्चीस लाख लेकर आती हो तो उसका (रिश्ता) पहले (स्वीकार करेगा)। बड़ों का रिश्ता स्वीकार करेगा! यहाँ कहते हैं तीन लोक के नाथ-बड़े का वचन तो एकबार स्वीकार!! आ...हा...हा...!

रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है। अरे! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा! कहाँ गया तू परन्तु? बाहर का बाहर ही रुक गया, तो भाई! वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी? बाहर में अटक गया, तो इसमें आत्मा कहाँ से प्राप्त होगा?

विशेष कहेंगे...!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)